IGKV/PUB/2024/T.bl/14

अलसी उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी

संचालनालय अनुसंधान सेवायें
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

इं.गां.कृ.वि./प्रका./त.पु./2024/14

प्रेरणास्त्रोत : **डॉ. गिरीश चंदेल**
माननीय कुलपति, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

मार्गदर्शन : **डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी**
संचालक अनुसंधान
संचालनालय अनुसंधान सेवाएं, इं.गां.कृ.वि., रायपुर (छ.ग.)

डॉ. दीपक शर्मा
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, इं.गां.कृ.वि., रायपुर (छ.ग.)

लेखन : **डॉ. नंदन मेहता**
प्रमुख वैज्ञानिक, अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग
डॉ. बी.पी. कतलम
प्रमुख वैज्ञानिक, कीट विज्ञान विभाग
डॉ. संजय कुमार द्विवेदी
प्रमुख वैज्ञानिक, सस्य विज्ञान विभाग
डॉ. आशुलता कौशल
वैज्ञानिक, पौध रोग विभाग

सम्पादन एवं मुद्रण : **डॉ. एच.सी. नन्दा,** प्रभारी (तकनीकी प्रकोष्ठ)
डॉ. आर.आर. सक्सेना, सह संचालक अनुसंधान
डॉ. पी.के. जोशी, सह संचालक अनुसंधान
डॉ. धनंजय शर्मा, सह संचालक अनुसंधान
विश्वविद्यालय तकनीकी प्रकोष्ठ
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

प्रकाशन वर्ष : 2024

प्रतियां : 500

संचालनालय अनुसंधान सेवायें
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

अलसी उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी

लेखक
डॉ. नंदन मेहता
डॉ. भानूप्रताप कतलम
डॉ. संजय कुमार द्विवेदी
डॉ. आशूलता कौशल

सम्पादन एवं मुद्रण
विश्वविद्यालय तकनीकी प्रकोष्ठ
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

संचालनालय अनुसंधान सेवायें
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग) 492012

Prof. (Dr.) Girish Chandel
डॉ. गिरीश चंदेल
Vice-Chancellor
कुलपति

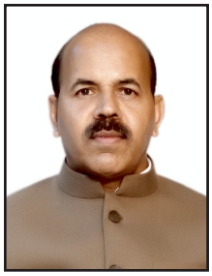

INDIRA GANDHI KRISHI VISHWAVIDYALAYA
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय
Krishak Nagar, Raipur - 492012
कृषक नगर, रायपुर - 492012
Chhattisgarh, INDIA
छत्तीसगढ़, भारत

No. PA/VC/188/2024/527
Date : 07/10/2024

प्राक्कथन

भारत में लगाए जानी वाली रबी तिलहनी फसलों में अलसी का विशेष स्थान है। अलसी को वर्तमान परिदृश्य में व्यवसायिक तिलहन के साथ साथ औषधीय, स्वास्थ्यवर्धक खाद्य पदार्थ भी माना जा रहा है। इसके रेशे से कपड़े का निर्माण भी अब बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। उपरोक्त बिन्दुओं के कारण आज अलसी एक बहुउद्देशीय फसल के रूप में सामने आई है।

छत्तीसगढ़ भारत में अलसी उत्पादन करने वाला एक महत्वपूर्ण राज्य है जिसमें अलसी का क्षेत्रफल 115 हजार हेक्टेयर, उत्पादन 3.89 हजार टन एवं 338 किलोग्राम प्रति हेक्टयर उत्पादकता है। छत्तीसगढ़ के कई जिलों में जैसे रायपुर, दुर्ग, राजनांदगाँव, बिलासपुर, धमतरी एवं कांकेर में इसका उत्पादन सिंचित, वर्षा आधारित एवं उतेरा तीनों पद्धतियों से किया जाता है। अलसी की उपयोगिता, महत्व, कम लागत एवं ज्यादा मुनाफे को देखते हुए इसके प्रति आकर्षण एवं संभावनाएँ अपार है।

समसामयिक परिप्रेक्ष्य को दृष्टिगत रखते हुए अखिल भारतीय समन्वित अलसी अनुसंधान परियोजना रायपुर द्वारा अलसी उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी विषय पर पुस्तिका का प्रकाशन प्रशंसनीय है। मैं इसके लेखन एवं सम्पादन हेतु सहृदय बधाई देता हूँ। इस पुस्तिका में उल्लेख की गयी अलसी की उन्नत किस्में, सस्य प्रौद्योगिकी, जल, उर्वरक, खरपतवार, कीट व्याधियाँ प्रबंधन आदि की जानकारी कृषकों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं हेतु अत्यंत उपयोगी साबित होगी।

शुभकामनाओं सहित....

(गिरीश चंदेल)

DIRECTORATE OF RESEARCH SERVICES
संचालनालय अनुसंधान सेवायें
INDIRA GANDHI KRISHI VISHWAVIDYALAYA, RAIPUR - 492012 (C.G.)
इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर - 492012 (छ.ग.)

डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी
संचालक अनुसंधान सेवायें
Dr. Vivek Kumar Tripathi
Director Research

S.No. 1846
Date : 14.10.2024

संदेश

अलसी तिलहनी वर्ग की एक महत्वपूर्ण फसल है, जो कि विश्व में बहुत पुराने समय से उगाई जा रही है। इसका प्रयोग तेल एवं रेशा निकालने हेतु किया जाता है। औषधीय गुणों की प्रचुरता जैसे ओमेगा 3 एवं विटामिन बी 12 होने के कारण यह हृदय रोग एवं शारीरिक विकास हेतु अत्यंत उपयोगी है। इन गुणों के कारण आज अलसी स्वास्थ्यवर्धक खाद्य के रूप में भी अपनी पहचान बना रहा है। छत्तीसगढ़ का भारत के अलसी उत्पादन करने वाले महत्वपूर्ण राज्यों में तीसरा स्थान है। देश भर के अलसी बीजों की आवश्यकता का 40 प्रतिशत हिस्सा छत्तीसगढ़ के द्वारा प्रदान किया जा रहा है. ई.गा. कृ.वि. में संचालित अखिल भारतीय समन्वित अलसी अनुसंधान परियोजना द्वारा कुल 16 किस्में विकसित की जा चुकी है, जो कि विभिन्न परिस्थितियों में अधिक उत्पादन देने में सक्षम है। छत्तीसगढ़ में अलसी से रेशा उत्पादन करने का कार्य सुचारु रूप से आरंभ हो चुका है। कृषकों के बीच अलसी की मांग साल–दर–साल बढ़ती दिखाई दे रही है। इस परिपेक्ष्य में यह तकनीकि पुस्तिका अलसी उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी कृषि से जुड़े लोगों के लिए लाभकारी साबित होगी।

मैं इस पुस्तिका के प्रकाशन हेतु अखिल भारतीय समन्वित अलसी परियोजना, रायपुर के वैज्ञानिकों को हार्दिक शुभकामनायें देता हूँ।

(विवेक कुमार त्रिपाठी)

अनुक्रमणिका

क्र.	विवरण	पृष्ठ संख्या
1.	सारांश	1
2.	वर्तमान परिदृश्य	1
3.	वानस्पतिक विवरण एवं जलवायु	2
4.	भूमि एवं भूमि की तैयारी	3
5.	बुवाई का समय एवं अन्तर्वर्ती फसल	4
6.	उन्नतशील प्रजातियां	5
7.	बीज, बुआई एवं गहराई	8
8.	खाद एवं उर्वरक प्रबंधन	9
9.	सिंचाई प्रबंधन	9
10.	खरपतवार प्रबंधन	9
11.	पौध संरक्षण	10
12.	फसल चक्र एवं शून्य भू–परिष्करण	14
13.	उतेरा पद्धति से अलसी की खेती	15
14.	कटाई–गहाई	16
15.	अधिकतम उपज क्षमता	16
16.	भण्डारण	16
17.	फसल लागत एवं शुद्ध लाभ	16
18.	रेशा उत्पादन	16

अलसी उन्नत उत्पादन प्रौद्योगिकी

सारांश

अलसी हमारे देश की महत्वपूर्ण रबी तिलहनी फसलों में से एक है, खेती एवं बीज उत्पादन के क्षेत्र में यह रेपसीड सरसों के बाद आती है। भारत में इसकी खेती लगभग 209 हजार हेक्टेयर में की जाती है जिससे 140 हजार टन के लगभग उत्पादन एवं प्रति हेक्टेयर उत्पादकता 669 किलो प्राप्त होती है। मध्यप्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़ एवं उड़ीसा अलसी के प्रमुख उत्पादक राज्य हैं। भारत के अधिकांश अलसी उत्पादक राज्यों में अलसी की खेती वर्षा आधारित (63 प्रतिशत) उतेरा (25 प्रतिशत) और सिंचित (17 प्रतिशत) परिस्थितियों में कम लागत में की जाती है। छत्तीसगढ़ में इसकी खेती लगभग 44 हजार हेक्टेयर में की जाती है। इसका उपयोग तेल एवं रेशा निकालने के लिये किया जाता है। अलसी में औषधीय गुणों के कारण शहरी क्षेत्रों में भी अलसी एक स्वास्थ्यपरक खाद्य के रुप में प्रचलित हो रही है। वर्तमान में यदि अलसी उत्पादन हेतु उन्नत सस्य प्रौद्योगिकी जैसे उन्नतशील प्रजातियां (आर एल सी–92, आर. एल. सी–133, आर एल. सी.–143, आर एल सी –148, आर एल सी –153), उचित मात्रा में खाद एवं उर्वरक प्रबंधन (5–10 टन प्रति हेक्टेयर गोबर खाद, नत्रजन फास्फोरस :पोटाश 60:30:30 कि.ग्राम/हेक्टेयर क्रमशः), समय पर बुबाई (मध्य नवंबर में), उचित फसल विन्यास (30 से.मी), पर्याप्त बीज दर (25–30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर), क्रान्तिक अवस्था पर सिंचाई (2–3 सिंचाई), रासायनिक खरपतवार नियंत्रण (मेटसल्फ्यूरान मिथाइल 4ग्रा./हे.), 2 प्रतिशत यूरिया का छिड़काव, जैविक उर्वरकों का उपयोग एवं उचित पादप संरक्षण को अपनाकर 20–22 क्विंटल/हे. तक उत्पादन छत्तीसगढ़ में लिया जा सकता है।

वर्तमान परिदृश्य :

वर्ष 2022 23 में 1.38 लाख करोड़ रुपये खाद्य तेल के आयात में व्यय किया गया। जिसे सुदृढ़ करने के लिए तिलहनी फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देना होगा। अलसी भारत की महत्वपूर्ण तिलहनी एवं रेशेदार रबी फसल है जिसे प्रायः 18 प्रदेशों में असिंचित एवं सिंचित फसल के रुप में उगाया जाता है। प्रायः ठण्डे देशों में अलसी के पौधों के तने से एक प्रकार का रेशा भी निकाला आता है जिसे फ्लैक्स कहते है। भारत में अलसी की खेती मुख्यतः तेल के लिए की जाती है। इसके बीज में 35 से 45 प्रतिशत तेल और 18.3 प्रतिशत प्रोटीन तथा 4.8 प्रतिशत रेशा पाया जाता है। अलसी के तेल में 22.5 प्रतिशत लिनोलिक अम्ल पाया जाता है। अलसी का तेल शीघ्र सूखने वाला होता है। इस तेल का उपयोग पेट, वार्निश, साबुन, रंग, स्याही आदि बनाने में किया जाता है। अलसी के तेल को खाद्य तेल के रूप में उपयोग करने में लोगों की रुचि बढ़ रही है क्योंकि इसके तेल में ओमेगा–3 फैटी एसिड (लिनोलेनिक अम्ल) बड़े पैमाने पर पाया जाता है. जो कि स्वास्थ्य के लिए अत्यंत लाभकारी बताया जाता है। ओमेगा 3 के उपयोग से खून में ट्राइग्लिसराइड/कोलेस्ट्राल के स्तर में कमी आती है जिससे हृदय रोग, जोड़ों में दर्द, संधि शोध रोग आदि में लाभप्रद है। प्रायः शाकाहारी मनुष्यों में ओमेगा–3 को कमी पायी जाती है। अतः वर्तमान परिदृश्य में शाकाहारी मनुष्यों के लिये अलसी की महत्ता अधिक हो गयी है जिसके उपयोग से विभिन्न प्रकार की उपरोक्त बीमारियों से बचा जा सकता है। इसकी खली में लगभग 27 प्रतिशत प्रोटीन, 7 प्रतिशत रेशा और 7 प्रतिशत खनिज पाया जाता है, जिससे यह पशुओं के लिए

सबसे उत्तम खली (केक) मानी जाती है। खली में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की मात्रा क्रमशः 4.9, 0.4 व 0.3 प्रतिशत पायी जाती है। सीमित मात्रा में खाद के रुप में भी इसका उपयोग किया जाता है। इसके पौधों के तने से रेशे भी निकाले जाते हैं जिससे लिनेन फाइबर तैयार किया जाता है। इसका प्रयोग दरी, कैनवास तथा मोटे कपड़े बनाने में किया जाता है। इसके रेशे से अच्छी गुणवत्ता वाला कपड़ा भी बनाया जा सकता है। रेशे निकालने के बाद बचे हुए तने का कड़ा भाग सिगरेट में प्रयोग होने वाले कागज बनाने, गत्ता आदि के काम में आता है। विश्व में अलसी या फ्लैक्स बहुत पुराने समय से उगायी जाती रही है। अलसी के रेशे का सर्वाधिक उत्पादन रूस में होता है। विश्व में सर्वोतम किस्म का रेशा आयरलैण्ड में निकलता है। यूरोपीय देशों में भी अलसी से रेशा निकाला जाता है। गर्म देशों में अलसी का रेशा उत्तम गुणवत्ता का नहीं होता है लेकिन, अच्छी गुणवता का रेशा बनाने की संभावनायें भारत में भी है। वर्तमान में भारत की उत्पादकता अन्य देशों की तुलना में काफी कम है।

वर्ष 2018–19 से 2022–23 के आंकड़ों के अनुसार छत्तीसगढ़ राज्य एवं देश में अलसी के क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता में उतार–चढ़ाव दर्ज किया गया है। इस अवधि में छत्तीसगढ़ राज्य में सबसे अधिक क्षेत्रफल (45.15 हजार हेक्टेयर) वर्ष 2021–22 में एवं देश में वर्ष 2022–2023 में (209 हजार हेक्टेयर) सर्वाधिक रहा। भारत में अलसी की खेतों मुख्यतया म.प्र.–छ. ग. आदि प्रदेशों में की जाती है। छत्तीसगढ़ में बलरामपुर, सरगुजा, राजनांदगाँव एवं बालोद क्षेत्रों में प्रमुख रुप से असिंचित अथवा उतेरा फसल के रूप में अलसी की खेतों की जा रही है। भारत एवं छत्तीसगढ़ राज्य में इसका क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता वर्षवार निम्नलिखित है :–

वर्ष	क्षेत्रफल (000 हे.)		उत्पादन (000 टन)		उत्पादकता (किग्रा/हे.)	
	छत्तीसगढ़	भारत	छत्तीसगढ़	भारत	छत्तीसगढ़	भारत
2018–19	39.63	170	10.1	100	256	574
2019–20	49.26	180	14.0	121	300	671
2020–21	40.26	183	14.7	111	372	605
2021–22	45.15	195	13.1	130	294	666
2022–23	44.10	209	13.6	140	316	669

वानस्पतिक विवरण एवं जलवायु

सामान्तः अलसी को दो प्रकार से बांटा गया है, अलसी जिसे तेल उपयोग के रुप में जो कि प्रायः भारत में पायी जाती है। दूसरी जिसे फ्लैक्स कहते है जिसका उपयोग प्रायः रेशा बनाने में किया जाता है, जिसकी ऊँचाई अधिक होती है। अलसी लिनिएसी कुल का एक वर्षीय पौधा है, जिसकी ऊँचाई 30–105 से.मी. तक होती है। इसकी जड़ें टेपरुट होती है जिसमें बहुत छोटी छोटी जड़े होती हैं। जड़े भूमि में अधिक गहराई तक नहीं जाती है लेकिन हल्की मिट्टी में इसकी जड़े 90–120 से.मी. तक गहरी चली जाती है। मुख्य तनों के निचले भाग से 35 शाखायें निकलती है। इसकी पत्तियाँ छोटी और पतली होती है जो पौधों पर एकान्तर क्रम में निकलती है। इसके फूल में

5 पंखुडियाँ होती है जिनका रंग सफेद, नीला, बैगनी या गुलाबी होता है। इसके फल को संपुट कहते है। प्रत्येक संपुट में प्रायः 08–10 बीज होते है। बीज का एक शिरा गोल तथा दूसरा नुकीला होता है। इसके बीज का रंग प्रायः हल्का भूरा होता है। इसके बीज में अंकुरण क्षमता बहुत अधिक होती है। अच्छी प्रकार से भंडारित बीज 5–10 वर्ष तक अंकुरित हो सकता है। अलसी में बहुधा स्वयं परागण होता है।

अलसी की खेती के लिये सामान्य तौर पर ठण्डी और शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। ठंडे देशों में इसे बहुधा रेशे के लिए उगाया जाता है। अलसी की फसल रबी मौसम (शरद काल) में ली जाती है। सामान्तयः 80–100 से मी वार्षिक वर्षा अलसी की खेती के लिए उपयुक्त राहती है। इसकी अच्छी फसल के लिए 21–27 सेंटीग्रेट तापक्रम उपयुक्त रहता है। जीवन काल के आरम्भ में अधिक तापमान होने से पौधे रोगी हो जाते हैं। फसल वृद्धि या फूल आने के समय पाले का पड़ना अत्याधिक हानिकारक होता है। रेशा उत्पादन करने वाली किस्मों के लिए ठंडा और आर्द्र वातावरण अच्छा माना जाता है। फसल पकने के समय दाना एवं रेशा वाली दोनों ही किस्मों को अपेक्षाकृत अधिक तापक्रम तथा शुष्क वातावरण की आवश्यकता होती है।

भूमि एवं भूमि की तैयारी

अलसी की उत्तम खेती के लिए मध्यम उपजाऊ दोमट मृदा उत्तम होती है। असिंचित अवस्थाओं में भारी मटियार एवं दोमट भूमि में अधिक नमी संरक्षण होने की वजह से अलसी की खेती उपयुक्त पायी गई है। मध्य प्रदेश में इसकी खेती कपास की काली मिट्टियों में की जाती है। यदि ऊपर की मिटटी दोमट तथा नीचे की मटियार हो तो फमल अच्छी होती है। उतेरा पद्धति (धान को खड़ी फसल में बीज बोना) के लिए धान के भारी मिट्टी के खेत, जिसमें नमी अधिक समय तक संचित रहती है, उपयुक्त रहती है। मृदा का पी.एच मान उदासीन होना चाहिए। खेत में जलनिकास का उत्तम प्रबंध होना अनिवार्य है।

बीज के अंकुरण और उचित पौध वृद्धि के लिए आवश्यक है कि बुवाई से पूर्व भूमि को अच्छी प्रकार से तैयार कर लिया जाए। धान की फसल कटाई पश्चात बतर आने पर खेत के मिट्टी पलटने वाले हल से एक बार जोतने के पश्चात 2–3 बार देशी या हैरो चलाकर भूमि तैयार की जाती है। बुआई के बाद पाटा चलाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए जिससे भूमि में नमी संचित हो सके। अनुसंधान से भी यह सिद्ध हुआ है कि खेत तैयार करके बुआई पश्चात पाटा लगाकर सिंचाई करने से अधिक एवं पर्याप्त पौध संस्थापन होता है जिसके परिणाम स्वरुप अधिक उपज प्राप्त होती है।

बुआई का समय एवं अन्तर्वती फसल

अलसी की बुआई अक्टूबर के अंतिम सप्ताह से लेकर मध्य नवंबर तक की जाती है। सिंचित उतेरा दशा में अक्टूबर के दूसरे पखवाड़े से बुआई प्रारंभ कर लेना चाहिये परन्तु यह निश्चित करना चाहिये कि पर्याप्त मात्रा में नमी हो। अधिक देर से फसल बोने पर गेरुआ, बुकनी रोग तथा अलसी की मक्खी द्वारा फसल को काफी नुकसान होता है। छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश में धान की खड़ी फसल में अलसी की बुआई (उतेरा) सामान्य समय से 15–20 दिन पूर्व ही कर दी जाती है।

मिश्रित खेतों में अलसी मुख्य फसल के साथ भी बोई जाती है। विभिन्न अनुसंधान के परिणामों से यह पाया गया है कि अलसी की चने के साथ, अन्तर्वर्ती फसल जिसमे 4 पक्तिया अलसी की एवं 4 पक्तियां चने की अधिक लाभप्रद पायी गयी है। जिससे दलहनी एवं तिलहनी दोनों तरह की फसल किसानों को प्राप्त हो जाती है।

उन्नतशील प्रजातियाँ

अलसी की देशी किस्मों की उपज क्षमता कम होती है क्योंकि इन पर कीट तथा रोगों का प्रकोप भी अधिक होता है। अतः अधिकतम उपज लेने के लिए देशी किस्मों के स्थान पर उन्नत किस्मों के प्रमाणित बीज का उपयोग करना चाहिए। क्षेत्र विशेष के लिए जारी की गई किस्मों को उसी क्षेत्र में उगाया जाना चाहिए अन्यथा जलवायु संबंधी अंतर होने के कारण भरपूर उपज नहीं प्राप्त हो पाती।

इंदिरा गांधी विश्वविद्यालय द्वारा विकसित अलसी की नवीन उन्नत किस्मों की विशेषताएं

आर.एल.सी.-92

यह किस्म 110 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा औसतन 12 क्विंटल प्रति हेक्टयर उपज देती है। इसके बीज कत्थई रंग तथा बड़े (1000 दानों का भार 6.8 ग्राम) आकार में होते है। बीज में तेल 42 प्रतिशत तक पाया जाता है। यह चूर्णिल आसिता, म्लानि रोग प्रतिरोधी व बड फ्लाई कीट के लिए सहनशील है। देर से बोने, सिंचित, असिंचित व उतेरा खेती हेतु उपयुक्त किस्म है। वर्तमान प्रयोगों (वैज्ञानिक प्रबन्धन) में इस प्रजाति की 23 क्विंटल/हेक्टयर तक उपज प्राप्त की गई है। यह छत्तीसगढ़, महाराश्ट्र, कर्नाटक, एवं आन्ध्रप्रदेश हेतु उपयुक्त है।

छत्तीसगढ़ अलसी-1 (आर.एल.सी.133)

यह किस्म 103 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा औसतन वर्षा आधारित खेती में 7–9 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। बीज में तेल 36 प्रतिशत तक पाया जाता है। यह कलिका मक्खी (बड पलाइ) कीट सहनशील है। यह छत्तीसगढ़ की अर्द्धसिंचित, वर्षा आधारित दशा में खेती हेतु उपयुक्त है।

आर.एल.सी. 143 (उतेरा अलसी)

यह किस्म 115–120 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा औसतन वर्षा आधारित खेतों में 56 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। बीज में तेल 34 प्रतिशत तक पाया जाता है। यह भभूतिया, उकठा, रतुआ प्रतिरोधी एवं कलिका मक्खी (बड फ्लाई), अंगमारी कीट के लिए सहनशील है। यह उतेरा में खेती हेतु छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, बिहार, झारखंड एवं आसम हेतु उपयुक्त है।

आर.एल.सी. 148 (वर्षा अलसी)

यह किस्म 115–120 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा औसतन वर्षा आधारित खेती में 10–11 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके बीज हल्का भूरा रंग तथा बड़े आकार के होते है। बीज में तेल 36 प्रतिशत तक पाया जाता है। यह उकठा, गेरुआ तथा अल्टरनेरिया झुलसा रोग के लिए सहनशील है। यह वर्षा आधारित खेती हेतु राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ एवं कर्नाटक हेतु उपयुक्त है।

आर.एल.सी 153 (उतेरा अलसी -2)

यह किस्म 118–120 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 5–6 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके बीज हल्का भूरा रंग तथा बड़े आकार के होते है। बीज में तेल 35 प्रतिशत तक पाया जाता है। यह चूर्णिल फफूंदी, उकठा, गेरुआ तथा अल्टरनेरिया झुलसा रोग के लिए

सहनशील है। यह उतेरा खेती हेतु, मध्यप्रदेश उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र उडीसा, झारखंड, असम, बिहार, छत्तीसगढ़ एवं कर्नाटक हेतु उपयुक्त है।

आर.एल.सी.-161

यह जाति 118–125 दिनों में पककर तैयार हो जाती हैं तथा 11–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती हैं। इसके बीज में लगभग 32 प्रतिशत तेल पाया जाता है। यह उकठा एवं चूर्णिल फफूंदी हेतु सहनसील व बड फलाई हेतु मध्यम सहनशील हैं। यह वर्षा आधारित खेती हेतु जोन–1 (जम्मू, पंजाब, हिमाचल प्रदेश एवं छत्तीसगढ़) हेतु उपयुक्त हैं।

आर एल. सी. 164

यह किस्म 117–124 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 11 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके बीज हल्का भूरा रंग तथा बड़े आकार के होते हैं। बीज में तेल 32.6 प्रतिशत तक पाया जाता है। वर्षा आधारित खेतों हेतु उपयुक्त है। अल्टरनेरिया एवं उकठा हेतु सहनशील, बड फलाई हेतु मध्यम सहनशील है। यह किस्म जोन 1 (जम्मू, पंजाब, हिमाचल प्रदेश एवं छतीसगढ़) हेतु उपयुक्त हैं।

आर.एल.सी. 167

यह किस्म 118–122 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 12.97 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके बीज हल्का भूरा रंग तथा बड़े आकार के होते है। बीज में तेल 34.3 प्रतिशत तक पाया जाता है। सिंचित खेती हेतु उपयुक्त है। भभूतिया, उकठा एवं बड फ्लाई हेतु सहनशील है। यह वर्षा आधारित खेती हेतु जोन–1 के जम्मू–कश्मीर, पंजाब, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तीसगढ़ हेतु उपयुक्त हैं।

आर.एल.सी. 171 : (वर्षा अलसी-2)

यह किस्म 125–130 दिन में पककर तैयार हो जाती है तथा 11.75 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके बीज हल्का भूरा रंग तथा बड़े आकार के होते है। बीज में तेल 34.5 प्रतिशत तक पाया जाता है। वर्शा आधारित खेती हेतु जम्मू कश्मीर, पंजाब, हिमाचलप्रदेश, झारखंड, उत्तरप्रदेश, असम, बिहार, नागालैंड हेतु उपयुक्त है।

दीपिका : (इन्दिरा अलसी-23) (आर.एल.सी.-78)

इस किस्म की पकने की अवधि 112–115 दिन औसत उपज 12–13 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तथा बीज में तेल का अंश 41 प्रतिशत होता है। अनुमोदित उर्वरक देने पर 20 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज देती है। इसके बीज मध्यम आकार (1000 दानों का भार 6.2 ग्राम) के होते है, या अर्द्ध–सिंचित व उतेरा में छत्तीसगढ़ हेतु उपयुक्त है। यह किस्म म्लानि (विल्ट) और रतुआ (रस्ट) रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधक है।

इंदिरा अलसी 32 : (आर.एल.सी.-81)

यह 100–105 दिन में पकने वाली किस्म है, जिससे 10–12 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है. बीज हल्के कत्थई रंग मध्यम आकार (1000 दानो का भार 6.5 ग्राम) के होते है। इसके बीज में तेल का अंश 39.3 प्रतिशत होता है। यह चूर्णिल आसिता रोग के प्रति मध्यम रोधी परन्तु म्लानि व अल्टरनेरिया झुलसा रोग के प्रति सहिष्णु किस्म हैं। असिंचित दशा और उत्तेरा खेतीं के लिए छत्तीसगढ़ महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं उड़ीसा हेतु उपयुक्त है।

कार्तिका : (आर.एल.सी.-76)

यह किस्म 98–104 दिन में तैयार हो जाती है तथा औसतन 12–14 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है। इसके बीज हल्के कत्थई रंग तथा मध्यम आकार (1000 दानों का भार 5. 5 ग्राम) के होते हैं। बीज में 43 प्रतिशत तेल पाया जाता है, यह किस्म प्रमुख रोग व कलिका मक्खी (बड फ्लाई) कीट के प्रति मध्यम रोधी है तथा सिंचित व अर्द्ध सिंचित दशा में छतीसगढ़ के लिए उपयुक्त है।

बीज, बुआई एवं गहराई

अलसी को पंक्तियों में बुआई के लिए 25–30 किलो प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता पड़ती है। बीज छोटा होने के कारण कहीं–कहीं इसे बारीक गोबर की खाद, रेत, राख या मिट्टी के साथ मिलाकर बोते है. जिससे खेत में समरूपता से बोआई हो सके। बीज सदैव प्रमाणित तथा कवकनाशी रसायन जैसे थायरम या कैप्टान 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा बीज के हिसाब से उपचारित करके ही बोना चाहिए। एजोटोबैक्टर एवं पी.एस.बी 5 ग्राम प्रति कि ग्रा. के हिसाब से भी बीज उपचारित करना लाभप्रद पाया गया है। अलसी की बुवाई हल के पीछे कूँड में चोंगे द्वारा कतार में या छिड़कवा विधि से की जाती है। परन्तु हल के पीछे कूंड विधि से बुवाई सर्वोत्तम मानी जाती है। बुवाई सदैव पंक्तियों में ही करना चाहिए। ट्रैक्टर चालित सीड ड्रिल का प्रयोग करके भी इसकी बुवाई कर सकते है इससे सस्य क्रियाएं करने में आसानी रहती हैं। बुवाई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 से 30 से.मी. रखनी चाहिए। ध्यान रखें कि बीज 3–4 से.मी. से अधिक की गहराई पर न

पड़े। पौधे से पौधे की दूरी 5–6 सेमी. रखते है जो कि अंकुरण पश्चात् निंदाई के समय पौध विरलन में स्थापित की जाती है। बीज एवं रेशा दोनों एक साथ देने वाली किस्मों में बीज दर अपेक्षाकृत अधिक रखी जाती है। रेशा वाली किस्में कम दूरी पर बोयी जाती है. जिससे पौधे की लंबाई अधिक हो जाती है एवं शाखाओं की सख्या कम हो जाती है जो कि रेशे हेतु अधिक उपयुक्त होती है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

पौधों की अच्छी बढ़वार और उपज के लिए भूमि में पोषक तत्वों की उचित मात्रा प्रदान करना आवश्यक है। सामान्य पद्धति से असिंचित भूमि में अलसी की खेती के लिए 40 किलो नत्रजन्र, 20 किलों स्फुर एवं 20 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर बुआई के समय देना चाहिए। सिंचित भूमि के लिए 60 किलो नत्रजन, 30 किलो स्फुर एवं 30 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर देना लाभप्रद रहता है 15–10 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद सिंचित एवं असिंचित दोनों अवस्था में लाभप्रद है। सिंचित दशा में नत्रजन की 50 प्रतिशत तथा फास्फोरस एवं पोटाश की संपूर्ण मात्रा बोने के समय देना चाहिए, दो सिंचाई की उपलब्धता होने पर नत्रजन को तीन भाग में प्रयोग करना चाहिए, जैसे 50 प्रतिशत बुआई के समय 25 प्रतिशत प्रथम सिंचाई एवं शेष 25 प्रतिशत दूसरी सिंचाई के समय प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन धारी उर्वरकों के प्रयोग से पौधों में फूल और संपुट अधिक संख्या में बनते है जिसके फलस्वरुप उपज में वृद्धि होती है। फास्फोरस प्रदान करने के लिए सिंगल सुपर फास्फेट का प्रयोग अधिक उपयोगी रहता है क्योंकि इससे फसल फास्फोरस के अतिरिक सल्फर तत्व भी प्राप्त कर लेती है जो कि बीज में तेल की मात्रा बढ़ाने में सहायक रहता है। 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव पुष्पन अवस्था प्रारंभ होने के समय करने से उपज में वृद्धि होती है।

सिंचाई प्रबंधन

अलसी की पैदावार बढ़ाने में सिंचाई का बहुत महत्व है. सिंचित अवस्था में अच्छी उपज के लिये 2–3 सिंचाई पर्याप्त है। सामान्य पद्धति से बोई जाने वाली अलसी में सिंचाई देने पर पैदावार डेढ़ से दो गुना अधिक ली जा सकती है। फसल बोते समय आवश्यकता होने पर सिंचाई देना चाहिए। पहली सिंचाई फसल बोने के 25–30 दिन बाद तथा दूसरी सिंचाई फसल में फूल आने के समय करना चाहिए। सिंचाई दाना बनते समय बंद कर देना चाहिए। एक सिंचाई उपलब्ध होने पर 40–50 दिन में करना चाहिये। खेत में जल निकास आवश्यक है। अलसी की फसल में पानी का जमाव नुकसानदायक है।

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार नियंत्रण अलसी की पैदावार बढ़ाने हेतु आवश्यक है। अलसी की फसल बोने से 35 दिन तक खरपतवार रहित रखनी चाहिए। इस समय खरपतवार नियंत्रण के उपाए न करने से 25–40 प्रतिशत तक उपज में हानि संभावित है। अलसी को खेतो में कम से कम एक निदाई गुड़ाई करना आवश्यक है। फसल बढ़वार की अवस्था में खड़ी फसल में निराई–गुड़ाई करना लाभप्रद पाया गया है। हल्की गुड़ाई में खरपतवार नियंत्रण के अलावा पौधों के बीच की जड़ों में

हवा का संचार भी बढ़ जाता है. जो कि उनकी वृद्धि के लिए आवश्यक पाया गया है। अलसी में रासायनिक विधि में खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथालिन 30 ईसी (धानूटॉप, पेन्डीस्टार्स, स्टॉम्प) 1 कि.ग्रा. स.त. प्रति हेक्टेयर बुबाई के तुरंत बाद छिडकाव करना चाहिये। फसल में शाखाएं बनने पर या जब पौधे 8–15 सेमी. ऊँचाई के हो/ या 2–3 पत्ती की खरपतवारों की अवस्था हो उस समय मेटसल्फ्यूरान मिथाइल (फ्रीडम, अल्टाग्रीप, मेट्रान) नींदानाशक 4 ग्रा.स.त. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कने से चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण पाया जा सकता है, चनोरी (मेडिकागो डेन्टीकुलाटा) खरपतवार का विशेष रुप से पूर्णरुपेण नियंत्रण हो जाता है। छत्तीसगढ़ तथा कुछ अन्य राज्यों में अमरबेल नामक पौधे (परजीवी) का प्रकोप अलसी की फसल में पाया जाता है। खड़ी फसल (2–3 सप्ताह की अवस्था में) में प्रोनोमाइड 1.5 कि.ग्रा प्रति हेक्टेयर का छिड़काव करने से अमरबेल पर नियंत्रण पाया जा सकता है। इसके अलावा फसल चक्र अपनाने से इस परजीवी के प्रसार को रोका जा सकता है।

पौध संरक्षण

कीट प्रबंधन

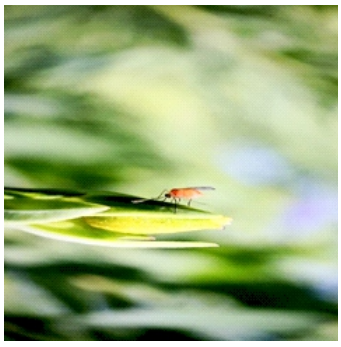

कलिका मक्खी (बड फ्लाई) : मादा 8–17 फूलों की तहों में या कोमल हरी कलियों में 29–103 चिकने पारदशों अंडे देती है या तो एकल या 3–5 के समूहों में अंडे 2–5 दिनों में फूट जाते हैं। अंडे से निकलने के ठीक बाद लार्वा पारदर्शी होते हैं, और कोमल पंखुडियों को खाना प्रारंभ कर देते हैं। 4–10 दिनो में चार अवस्थाओं से गुजरते हैं और जब पूर्ण विकसित हो जाते हैं तो बड के अंडाशय वाले भाग को खाने लगते है जिससे बीज का निर्माण नहीं हो पाता है। ये धीरे–धीरे गहरे गलाबी रंग के हो जाते हैं पूर्ण विकसित मैगट की लंबाई लगभग 2 मिमी होती है। पूर्ण विकसित कीड़े जमीन पर गिर जाते हैं, एक कोकून तैयार करते हैं और मिट्टी में कोषस्थ अवस्था धारण करते हैं। कोषस्थ अवधि 4–9 दिनों तक रहती है। एक पीढ़ी 10–24 दिन में पूरी हो जाती है। सीजन के दौरान चार अतिव्यापी पीढ़ियाँ होती हैं।

कलिका मक्खी का प्रबंधन :

निगरानी और शीघ्र पता लगाना

पीले चिपचिपे ट्रैप या दृश्य निरीक्षण का उपयोग करके कलिका मक्खी गतिविधि के लिए फसल की नियमित निगरानी प्रारंभिक पहचान समय पर प्रबंधन की अनुमति देती है और गंभीर संक्रमण को रोकती है।

सांस्कृतिक प्रथाएं

1. **फसल चक्र** : कलिका मक्खी के जीवन चक्र को तोड़ने और इसकी जनसंख्या वृद्धि को कम करने के लिए फसल चक्र कार्यक्रम लागू करें।

2. **समय पर बुआई** : चरम कलिका मक्खी की गतिविधि से बचने और फसल में संक्रमण की संभावना को कम करने के लिए जल्दी बुआई करें।

3. **स्वच्छता** : मिज कैरीओवर को कम करने के लिए संक्रमित फसल के अवशेषों को हटाकर और नष्ट करके अच्छी खेत की स्वच्छता अपनाएं।

जैविक नियंत्रण

विभिन्न प्रथाओं को लागू करके (पुष्प संसाधन प्रदान करें, प्राकृतिक वनस्पति को संरक्षित करें, व्यापक स्पेक्ट्रम कीटनाशकों से बचे, संरक्षण जुताई को लागू करें, पक्षियों के बैठने की जगह और घोंसले के बक्से स्थापित करें, और फसल चक्र का अभ्यास करें आदि), हम एक अधिक संतुलित और विविध पारिस्थितिकी तंत्र बना सकते हैं। आपके अलसी के खेतों में और उसके आसपास। यह, बदले में, लाभकारी जीवों को एक स्वस्थ आबादी का समर्थन करता है, जो अलसी के गॉल मिज जैसे कीटो को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करने और आपकी अलसी की फसल के समग्र स्वास्थ्य और उत्पादकता को बनाए रखने में मदद करता है।

रासायनिक नियंत्रण

यदि कीटो की संख्या आर्थिक सीमा स्तर (ईटीएल) से अधिक हो जाती है, तो कीटनाशकों के विवेकपूर्ण उपयोग पर विचार किया जा सकता है। गैर–लक्षित प्रभावों को कम करने और प्राकृतिक शत्रु आबादी को बढ़ावा देने के लिए अनुशंसित दरों और समय पर कीटनाशकों का प्रयोग करें। जब कलिका मक्खी के कीट फसल में आर्थिक सीमा स्तर (ईटीएल) को पार कर जाते हैं, तो निम्नलिखित कीटनाशकों में से एक का छिड़काव करना चाहिए, फिप्रोनिल 5 प्रतिशत एस.सी/1.0 मिली या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 प्रतिशत एम.ए.ल/0.3 मिली को प्रति लीटर पानी में मिलाकर, खड़ी फसल पर समानांतर रूप से छिड़काव करना चाहिए। 5 प्रतिशत एन.एस.के.ई (नीम के बीज के गिरी का अर्क) को उपचार के लिए निर्धारित किया गया है।

प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग

इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय (आईजीकेवी) रायपुर ने अलसी की कई किस्में विकसित की हैं, जैसे किरण (आरएलसी 6), कार्तिका इंदिरा अलसी 18 (आरएलसी 76), इंदिरा अलसी 32 (आरएलसी 81), दीपिका इंदिरा अलसी 23 (आरएलसी 78), इंदिरावती अलसी (आरएलसी–92), जिनके बारे में बताया गया है अलसी की कली मक्खी के खिलाफ प्रतिरोधी सहिष्णु।

थ्रिप्स : फूल आने की अवस्था के दौरान यह कीट सबसे अधिक सक्रिय होता है। इसका जीवन चक्र 2 से 4 सप्ताह के बीच रहता है। प्रत्येक वर्ष कई अतिव्यापी पीढ़ियां होती हैं। नवजात और वयस्क दोनों कोशिका रस पर भोजन करके पौधों को नुकसान पहुंचाते हैं। जबकि प्रभावित पौधे

आम तौर पर जीवित रहते हैं संक्रमण आधार तक बढ़ जाता हैं जिससे पत्तियां सिरे से सूख जाती हैं और भूरे रंग की हो जाती हैं। आमतौर पर सी–इंडिकस से संक्रमित पौधे जीवित रहते हैं। लेकिन संक्रमण धीरे–धीरे आधार तक फैल जाता है जिससे पत्तियां सिरे से सूख जाती हैं और भूरे रंग की हो जाती हैं। भारी नम मिट्टी और आर्द्र परिस्थितियों की तुलना में शुष्क मौसम के दौरान हल्की सूखी मिट्टी में उगाई जाने वालों फसलों में लक्षण अधिक तेजी से बढ़ते हैं। शुष्क मौसम में सी–इंडिकस थ्रिप्स अधिक तेजी से प्रजनन करता है जिससे फसल को गंभीर क्षति होती है।

1. प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग एकीकृत कीट प्रबंधन (आईपीएम) कार्यक्रम में, थ्रिप्स और अन्य कीटों के लिए प्रतिरोधी किस्मों के विकास को प्राथमिकता देना महत्वपूर्ण है। ये प्रतिरोधी या सहिष्णु खेती प्राकृतिक दुश्मनों और समग्र पारिस्थितिकी तंत्र की रक्षा करती है।

2. सांस्कृतिक और भौतिक तरीके कीट क्षति को कम करने के लिए बुवाई की तारीखों को समायोजित करना एक अत्यधिक प्रभावी सांस्कृतिक अभ्यास है। ऐसे समय में फसल लगाकर जब कीट गतिविधि कम होती है, किसान संक्रमण और क्षति की संभावना को कम कर सकते है।

3. कीटनाशकों का आवश्यकता आधारित और विवेकपूर्ण उपयोग विभिन्न कीट प्रबंधन रणनीतियों को लागू करने के बावजूद ऐसे उदाहरण है जब कीटनाशकों का अनुप्रयोग आवश्यक हो जाता है। अनुशंसित कम अवशिष्ट विषाक्तता वाले कीटनाशक, अलसी थ्रिप्स के खिलाफ भी प्रभावी साबित हुए हैं। सायंट्रानिलिप्रोल 10.26 प्रतिशत ओ.डी/1.0 मिली प्रति लीटर या प्रोफेनोफोस 50 ई.सी./ 2 मिली/ लीटर पानी में मिलाकर खड़ी फसल पर समानांतर रूप से छिड़काव करना चाहिए।

दीमक

दीमक से 18 प्रतिशत क्षति पौधे तक दर्ज किया गया। दीमक का संक्रमण फसल की परिपक्कता अवस्था के दौरान शुरू होता है। जिसमें अधिकतम क्षति जब मिट्टी सूखी होती है दीमक का आक्रमण अधिकतर पौधे के भूमिगत भागों पर होता है, विशेषकर शुष्क मौसम में। ग्रसित पौधे सूख जाते हैं और आसानी से उखाड़े जा सकते हैं। उस दौरान मिट्टी की स्थिति सूखी और फसल के आधार भाग पर हमला किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप अलसी का उत्पादन बाधित होता है। इसी प्रकार कीट कम नमी वाली मिट्टी में रहना और अधिक लकड़ी के ऊतकों को खाना पसंद करते हैं।

दीमक का प्रबंधन :

यह पौधों की जडों को खा जाती है, जिससे पौधे सूख जाते हैं। इससे बचाव के लिए बुवाई से पहले खेत की गहरी जुताई करें। खेत की तैयारी के समय 40 से 50 किलो नीम खली प्रति हेक्टेयर में मिलाए या क्लोरपायरीफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 20 किलो ग्राम प्रति हैक्टेयर की दर से उपयोग करें।

रोग प्रबंधन

अलसी की फसल में होने वाले रोग मुख्यतः कवकजनित होते हैं। जिन्हें समन्वित रोग प्रबंधन के सिद्धांतों को अपनाकर जैसे रोग रोधी अलसी की प्रजातियों का उपयोग करना, बीजोपचार करना, खड़ी फसल में फफूंदनाशकों का प्रयोग, फसल चक्र इत्यादि से आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। रोग के लक्षणों की सही पहचान कर विशिष्ट विधियों सें उनका प्रबंधन करने से होने वाली उपज हानि को कम किया जा सकता है।

अतः अलसी के मुख्य रोगों की पहचान एवं उनका प्रबंधन निम्न तरीकों से किया जा सकता है:–

उकठा रोग : यह रोग फ्युजेरियम लिनी नामक फफूंद सें होता है। यह रोग पौधों की किसी भी अवस्था में हो सकता है। शाखा निकलने की अवस्था से पौधों के पकने की अबस्था तक नीचे की पत्तियों से रोगग्रस्त पौधों का पीला पड़ना, उनका सूखना एव समय से पहले झड़ जाना रोग का प्रमुख लक्षण है। ग्रसित पौधों की अग्रकलिका मुरझाने लगती है व पौधे पूरी तरह सूखकर मर जाते हैं। इस रोग के कारण 80 प्रतिशत तक की फसल क्षति होने का आंकलन किया गया है।

प्रबंधन : गर्मी में खेत की गहरी जुताई करनी चाहिए। प्रत्येक वर्ष एक ही खेत में अलसी की फसल नहीं लेनी चाहिए तथा 2–3 साल का फसल चक्र अपनाना चाहिए। रोगरोधी जातियों जैसे आर. एल.सी 143 (उत्तेरा अलसी) एवं रोग सहनशील जातियां आर.एल.सी. 92, आर.एल.सी 148, आर. एल.सी. 153 (उतेरा अलसी–2), आर.एल.सी. 161 आदि का उपयोग करना रोग की रोकथाम हेतु सर्वोत्तम उपाय है। बीजों को बोने के पूर्व वीटावेक्स पॉवर (2 ग्राम/किलोग्राम बीज) अथवा ट्राइकोडर्मा विरडी या टाइकोडर्मा हारजियानम 10 ग्राम/किलो बीज के हिसाब में उपचारित करके ही बुवाई करें। 10 किलोग्राम/हेक्टेयर ट्राइकोडर्मा विरडी एक क्विंटल गोबर की खाद में मिलाकर आखरी जुताई के समय खेत में मिलाना चाहिए।

अल्टरनेरिया झुलसन : रोगग्रस्त पौधों की पत्तियों, तनों एवं पुष्प कलिकाओं पर भूरे रंग के छोटे–छोटे धब्बे बनते हैं जो बढ़कर पूरी पत्ती में फैलकर पत्तियों को सुखा देते हैं। पुष्प कलियों के ठीक नीचे पुष्पवृंत पर भूरे रंग की वलय (अंगूठी) बनती है जिससे कलियां सूख जाती है एवं थोड़े से झटके में ही टूटकर गिर जाती है।

प्रबंधन : रोग के प्रति मध्यम प्रतिरोधक एवं सहनशील जातियों को जैसे आर.एल.सी. 92, आर.एल. सी 148, आर.एल.सी 153, आर.एल. सी 164 को लगाना चाहिए। रोग से बचाव हेतु बीजों को बोने के पूर्व वीटावेक्स पॉवर (कार्बोक्सिन 37.5 प्रतिशत+थीरम 37.5 डी.एस.) से 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज में उपचारित करना चाहिए। रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखते ही प्रोपेकोनाजोल 25 ई.सी (टिल्ट) दवा की मात्रा (1 मिली./लीटर) या हेक्साकोनजोल 5 ई.सी (कोन्टाफ) (1 मि.ली/लीटर) की दर से छिड़काव करें एवं 10 –15 दिन के अन्तराल में पुनः छिड़काव 2–3 बार करना चाहिए।

भभूतिया रोग : रोगग्रस्त पौधों की ऊपरी पत्तियों में सफेद पावडर के समान बिखरे हुये चकते दिखाई देते हैं। रोग की उग्र अवस्था में संपूर्ण पौधा सफेद पावडर से ढके होने के कारण सफेद सा दिखाई देता हैं। इस रोग से ग्रसित पौधों के दाने छोटे एवं सिकुड़े होते हैं और दाने हल्के रह जाते हैं व उनमें तेल की मात्रा भी कम हो जाती है।

प्रबंधन : जल्दी पकने वालों किस्मों तथा समय से पहले बोई गई फसल पर इस रोग का संक्रमण कम होता है। रोगरोधी जातियों जैसे आर.एल.सी. 143 (उतेरा अलसी), आर.एल.सी 92, मध्यम प्रतिरोधी आर.एल.सी. 133 एवं रोग सहनशील प्रजातियां जैसे आर.एल. सी. 153, आर.एल.सी. 161, आर.एल.सी. 167 आदि का प्रयोग करना चाहिए। रोग के लक्षण प्रगट होने पर सल्फेक्स (3 ग्राम/लीटर) का छिडकाव 2 बार 8–10 दिन के अंतराल पर करना चाहिए।

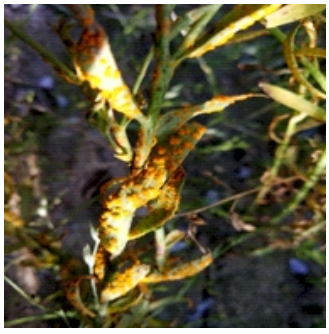

गेरूआ रोग/किट्ट रोग (मेलामसोरा लिनी) : रोग के प्रारंभिक लक्षण पत्तियों पर चमकीले, पीले–नारंगी रंग की फुंसियों के रूप में दिखाई देते हैं, ये फुसियां पीले प्रभामंडल से घिरी होती है। उपयुक्त वातावरण की अवस्था (15–16 से. ग्रे. तापमान) में फुंसियां पूरे पौधे में फैल जाती है। प्रकोप अधिक होने पर रोगग्रस्त पत्तियां अपरिपक्व अवस्था में ही गिर जाती है और पौधे धीरे–धीरे मरने लगते हैं। रोग की उग्र अवस्था में उपज 20 से 80 प्रतिशत तक कम होने का आंकलन किया गया है।

प्रबंधन : रोग को नियंत्रित करने का एकमात्र तरीका प्रतिरोधी किस्मों को उगाना है जैसे आर.एल. सी. 167, आर.एल.सी. 153, आर एल सी 143, आर एल. सी 92 इत्यादि।

फसल चक्र एवं शून्य भू-परिष्करण

खरीफ फसलें जैसे धान, मक्का, ज्वार, बाजरा, सोयाबीन आदि के बाद रबी में अलसी की फसल ली जाती है। अलसी की मिलवा खेती भी प्रचलित है। अलसी को चने या मसूर के साथ (4–4 कतार अनुपात), गेहूँ के साथ (3:1 या 4:1) या कुसुम के साथ भी अन्तर्वर्ती फसल के रुप में बोया जा सकता है। छत्तीसगढ़ में अलसी को प्रमुखतया उत्तेरा फसल के रुप में लिया जाता है। शून्य भू–परिष्करण विधि में जीरो टिल फर्टी–सीड ड्रिल के माध्यम से भी बुआई कर सकते हैं। इस विधि के माध्यम से धान के बाद बची हुई नमी में रबी की दूसरी फसल के रूप में अलसी की असिंचित अवस्था में एवं समय को बचाने हेतु उपयुक्त समय में बोवाई करके सफलता पूर्वक उत्पादन लिया जा सकता है।

उतेरा पद्धति से अलसी की खेती

अलसी को धान की पकी हुयी खड़ी फसल में छिड़कवा बोने की विधि को छत्तीसगढ़ एवं मध्यप्रदेश में 'उतेरा' तथा बिहार, उड़ीसा एवं उत्तर प्रदेश में 'पैराविधि' कहते है। धान के खेत की उपलब्ध नमी का समुचित उपयोग करने के लिए यह एक अच्छी पद्धति है। भारत वर्ष में कुल अलसी क्षेत्रफल का लगभग 25 से 30 प्रतिशत क्षेत्रफल उतेरा के अंतर्गत आता है। सामान्य तौर पर इस पद्धति में अलसी की खेती असिंचित दशा, अपर्याप्त पोषण और बिना पौध–संरक्षण के होती है इसलिये इसकी उपज अत्यंत कम (3–4 क्विंटल प्रति हेक्टेयर) होती है। प्रस्तुत उन्नत विधि से खेती करने पर उतेरा पद्धति से भी अच्छी उपज ली जा सकती है। विभित्र अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि उन्नत उतेरा पद्धति से 9–10 कि./प्रति हे. तक उत्पादन लिया जा सकता है।

'उतेरा' के लिए अनुमोदित किस्मों आर.एल.सी 92, इंदिरा अलसी 32 आदि) के बीज का प्रयोग करना चाहिए। उतेरा विधि भारी मृदाओं में जिनमें जल धारण करने की पर्याप्त क्षमता हो अपनाना चाहिए। उतेरा लेने के लिए धान की फसल में गोबर की खाद या हरी खाद तथा फौस्फेटिक उर्वरक का समुचित उपयोग करना चाहिए। अलसी बोने से 3 दिन पहले धान की खड़ी फसल में 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन उर्वरक का छिड़काव करना चाहिए या बुआई के 10–15 दिन के अंतर्गत पर्याप्त मात्रा में नमी होने पर छिड़काव करें। परन्तु जहां उतेरा पद्धति में पानी या सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो वहीं पर सिंचाई करने के उपरात नाहट्रोजन की मात्रा को दो भागों में बॉटकर उपयोग करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है। उतेरा के लिए प्रति हेक्टेयर 40 किग्रा. बीज का उपयोग करना चाहिए। पुष्पन अवस्था प्रारम्भ होने के समय 2 प्रतिशत यूरिया के घोल का छिड़काव करने से उपज में सकारात्मक वृद्धि पायी गयी है। उतेरा बोने के समय तथा धान के पकने के समय में जितना कम समय हो उतना ही अधिक फायदा धान व उतेरा फसल को होता है अर्थात जब धान की दैहिक परिपक्कता अवस्था हो या धान की बालियों पूरी तरह से नीचे लटकने लगे तभी छिडकवा बुवाई करनी चाहिये। बीज की बुवाई से पूर्व पी.एस.बी. एवं एजोटोबैक्टर से शोधित कर लेना चाहिए यह क्रम पहले फफूंदनाशी कीटनाशी, पी.एस.बी एवं एजोटोबैक्टर की संस्तुत दर से बीज शोधन करना चाहिये। अच्छी फसल के लिए 30 अक्टूबर तक उतेरा फसल को बोना (छिड़काव) चाहिए। बीज छिड़कते समय यह सावधानी आवश्यक है कि बीज खेत में समान रूप से फैल जाए इसके लिये यह सुनिश्चित करें की अलसी जमीन में अच्छी तरह पहुंच गयी है। अलसी में 1–2 बार हाथ से निराई–गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रित रहते है और उपज अधिक मिलती है। एक सिंचाई की उपलब्धता होने पर बुवाई के 50–55 दिन पश्चात सिंचाई करने से उपज में सकारात्मक वृद्धि पायी गयी। अधिक उपज के लिए आवश्यकतानुसार पौध सरक्षण उपाय भी अपनाने चाहिए।

कटाई -गहाई :

अलसी की पत्तिया पीली होकर झड़ने लग जाये तथा फल्लियों का रंग हल्का भूरा होने लगे तब फसल काट लेनी चाहिये। काटने के बाद अच्छी तरह धूप में सुखाकर गहाई करें। सफाई के बाद सूखे स्थान पर भण्डारण करना चाहिये ।

अधिकतम उपज क्षमता :

उत्पादन की उन्नत सस्य प्रबंधन प्रौद्योगिकी अपनाकर 20–22 क्रि./हे. उपज प्राप्त कर सकते हैं। उन्नत उतेरा पद्धति में 8–9 कि./हे. तक उपज प्राप्त कर सकते हैं।

भण्डारण :

शुरुआती नमी, वसीय अम्ल और भंडारण की स्थिति ये तीन मुख्य कारक है, जो अलसी के भंडारण में स्थायित्व को प्रभावित करते हैं। अलसी के बीज में 8–10 प्रतिशत तक नमी की मात्रा भंडारण के लिये सर्वोतम होती है। जो कि साधारणतया मौसम में 70 प्रतिशत सापेक्ष आर्द्रता होने से प्राप्त की जा सकती है।

फसल लागत एवं शुद्ध लाभ :

उपरोक्त उन्नत अलसी उत्पादन प्रौद्योगिकी अपनाकर 20–22 क्विं./हेक्टेयर उपज प्राप्त कर सकते हैं। जिसमें उत्पादन लागत लगभग 28–30 हजार रूपये तथा शुद्ध लाभ 75–80 हजार रूपये तक प्राप्त कर सकते है।

रेशा उत्पादन :

जूट या सनई की फसल की तरह अलसी के पौधों से रेशा प्राप्त करने के लिए पौधों को पहले पानी में सड़ाना पड़ता है। पौधों को बंडलों के रूप में बांधकर पानी में दबाया जाता है। तापक्रम के अनुसार 3–5 दिन में पौधे सड़ जाते हैं और रेशा अलग करने योग्य हो जाता है। सड़ने एवं सूखने के पश्चात पौधों से मशीन एवं हाथ के द्वारा रेशा अलग कर लिया जाता है। बाद में रेशे को भली प्रकार से साफ करके सूखा लिया जाता है। अलसी में प्राप्त रेशे की फ्लैक्स कहते है। रेशे का उपयोग कपड़ा एवं अन्य डेकोरेटिव आयटम बनाने में उपयोग किया जाता है।

अखिल भारतीय समन्वित अलसी परियोजना

अनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग

इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग)